प्रकाशकीय

अध्यात्मरसिक पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि जिसतरह डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने समयसार का अनुशीलन किया है और प्रवचनसार का अनुशीलन कर रहे हैं। उसीप्रकार पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के ट्रस्टी श्री सौभाग्यमलजी पाटनी के विशेष अनुरोध पर पण्डित श्री रतनचन्दजी भारिल्ल ने आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थ पंचास्तिकाय संग्रह का परिशीलन प्रारंभ किया है, जो अभी क्रमश: जैनपथप्रदर्शक के सम्पादकीय के रूप में प्रकाशित हो रहा है, पूरा होने पर ग्रन्थाकार भी यथासमय उपलब्ध होगा।

पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल ने पंचास्तिकाय के परिशीलन के साथ उसकी मूल गाथाओं का सरल-सुबोध हिन्दी पद्यानुवाद भी किया है, जो परिशीलन के साथ तो छपेगा ही, पाठकों की सुविधा के लिए हम लघु पुस्तिका के रूप में भी प्रकाशित कर रहे हैं, कुछ ही समय में इसका संगीतमय कैसिट (सी.डी.) भी तैयार होगा। पुस्तिका के अंत में पण्डित रतनचन्द भारिल्ल कृत 'तीर्थंकर स्तवन' भी जोड़ दिया है।

– ब्र. यशपाल जैन प्रकाशन मंत्री

प्रथम संस्करण : ५ हजार
(१७ अक्टूबर, २००४)

विक्रय मूल्य : **२ रुपये**

इस पुस्तिका की कीमत कम करने हेतु साहित्य प्रकाशन ध्रुवफण्ड, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर की ओर से ५०००/- रु. प्रदान किए गए। लागत मूल्य ३/- रु. है।

मुद्रक :
प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड
बाईस गोदाम, जयपुर

लेखक के अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. संस्कार (हिन्दी, मराठी, गुजराती)
२.विदाई की बेला (हिन्दी, मराठी, गुजराती)
३. इन भावों का फल क्या होगा (हि. म., गु.)
४. सुखी जीवन (हिन्दी) (नवीनतम कृति)
५. णमोकार महामंत्र (हि., म., गु., क.)
६. जिनपूजन रहस्य (हि.,म., गु., क.)
७. सामान्य श्रावकाचार (हि., म., गु.,क.)
८. पर से कुछ भी संबंध नहीं (हिन्दी)
९. बालबोध पाठमाला भाग-१(हि.म.गु.क.त.अं.)
१०. क्षत्रचूड़ामणि परिशीलन (नवीनतम)
११. समयसार : मनीषियों की दृष्टि में (हिन्दी)
१२. द्रव्यदृष्टि (नवीन संस्करण)
१३. हरिवंश कथा (द्वितीय संस्करण)
१४. षट्कारक अनुशीलन
१५. शलाका पुरुष पूर्वार्द्ध (द्वितीय संस्करण)
१६. शलाका पुरुष उत्तरार्द्ध (नवीन संस्करण)
१७. ऐसे क्या पाप किए (२१ निबंध)

सम्पादित एवं अनूदित कृतियाँ

१८ से २८. प्रवचनरत्नाकर भाग - १ से ११ तक (सम्पूर्ण सेट)
२९. सम्यग्दर्शन प्रवचन
३०. भक्तामर प्रवचन
३१. समाधिशतक प्रवचन
३२. पदार्थ विज्ञान (प्रवचनसार गाथा ९९ से १०२)
३३. गागर में सागर (प्रवचन)
३४. अहिंसा : महावीर की दृष्टि में
३५. गुणस्थान-विवेचन
३६. अहिंसा के पथ पर (कहानी संग्रह)
३७. विचित्र महोत्सव (कहानी संग्रह)

पंचास्तिकाय संग्रह पद्यानुवाद
एवं
तीर्थंकर स्तवन

पद्यानुवादक :
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.एम., बी.एड.

प्रकाशक
रवीन्द्र पाटनी फैमिली चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई

पञ्चास्तिकाय

(पद्यानुवाद)

शतइन्द्र वन्दित त्रिजगहित निर्मल मधुर जिनके वचन।
अनन्त गुणमय भवजयी जिननाथ को शत-शत नमन ।।१ ।।
सर्वज्ञभाषित भवनिवारक मुक्ति के जो हेतु हैं।
उन जिनवचन को नमन कर मैं कहूँ तुम उनको सुनो ।।२।।
पञ्चास्तिकाय समूह को ही समय जिनवर ने कहा।
यह समय जिसमें वर्तता वह लोक शेष अलोक है ।।३ ।।

आकाश पुद्गल जीव धर्म अधर्म ये सब काय हैं।
ये हैं नियत अस्तित्वमय अरु अणुमहान[१] अनन्य हैं ।।४ ।।
अनन्यपन धारण करें जो विविध गुण पर्याय से।
उन अस्तिकायों से अरे त्रैलोक यह निष्पन्न है ।।५ ।।
त्रिकालभावी परिणमित होते हुए भी नित्य जो।
वे पंच अस्तिकाय वर्तनलिंग[२] सह षट् द्रव्य हैं ।।६ ।।
परस्पर मिलते रहें अरु परस्पर अवकाश दें।
जल-दूध वत् मिलते हुए छोड़ें न स्व-स्व भाव को ।।७ ।।

१. प्रदेशों में बड़े २. काल द्रव्य।

सत्ता जनम-लय-ध्रौव्यमय अर एक सप्रतिपक्ष है।
सर्वार्थ थित सविश्वरूप-रु अनन्त पर्ययवंत है ।।८ ।।
जो द्रवित हो अर प्राप्त हो सद्भाव पर्ययरूप में।
अनन्य सत्ता से सदा ही वस्तुतः वह द्रव्य है ।।९।।
सद् द्रव्य का लक्षण कहा उत्पाद व्यय ध्रुव रूप वह।
आश्रय कहा है वही जिनने गुणों अर पर्याय का ।।१० ।।
उत्पाद-व्यय से रहित केवल सत् स्वभावी द्रव्य है।
द्रव्य की पर्याय ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवता धरे ।।११ ।।
पर्याय विरहित द्रव्य नहीं नहि द्रव्य बिन पर्याय है।
श्रमणजन यह कहें कि दोनों अनन्य-अभिन्न हैं ।।१२ ।।

द्रव्य बिन गुण नहीं एवं द्रव्य भी गुण बिन नहीं।
वे सदा अव्यतिरिक्त हैं यह बात जिनवर ने कही ।।१३।।
स्यात् अस्ति-नास्ति-उभय अर अवक्तव्य वस्तु धर्म हैं।
अस्ति-अवक्तव्यादि त्रय सापेक्ष सातों भंग हैं ।।१४।।
सत्द्रव्य का नहिं नाश हो अरु असत् का उत्पाद ना।
उत्पाद-व्यय होते सतत सब द्रव्य-गुणपर्याय में ।।१५ ।।
जीवादि ये सब भाव हैं जिय चेतना उपयोगमय।
देव-नारक-मनुज-तिर्यक् जीव की पर्याय हैं ।।१६।।
मनुज मर सुरलोक में देवादि पद धारण करें।
पर जीव दोनों दशा में ना नशे ना उत्पन्न हो ।।१७।।

जन्मे-मरे नित द्रव्य ही पर नाश-उद्भव न लहे।
सुर-मनुज पर्यय की अपेक्षा नाश-उद्भव हैं कहे।।१८।।
इस भाँति सत् का व्यय नहिं अर असत् का उत्पाद नहिं।
गति नाम नामक कर्म से सुर-नर-नरक - ये नाम हैं।।१९।।
जीव से अनुबद्ध ज्ञानावरण आदिक भाव जो।
उनका अशेष अभाव करके जीव होते सिद्ध हैं।।२०।।
भाव और अभाव भावाभाव अभावभाव में।
यह जीव गुणपर्यय सहित संसरण करता इसतरह।।२१।।
जीव-पुद्गल धरम-अधरम गगन अस्तिकाय सब।
अस्तित्वमय हैं अकृत कारणभूत हैं इस लोक के।।२२।।

सत्तास्वभावी जीव पुद्गल द्रव्य के परिणमन से।
है सिद्धि जिसकी काल वह कहा जिनवरदेव ने।।२३।।
रस-वर्ण पंचरु फरस अठ अर गंध दो से रहित है।
अगुरुलघुक अमूर्त युत अरु काल वर्तन हेतु है।।२४।।
समय-निमिष-कला-घड़ी दिनरात-मास-ऋतु-अयन।
वर्षादि का व्यवहार जो वह पराश्रित जिनवर कहा।।२५।।
विलम्ब अथवा शीघ्रता का ज्ञान होता माप से।
माप होता पुद्गलाश्रित काल अन्याश्रित कहा।।२६।।
आत्मा है जीव-देह प्रमाण चित्-उपयोगमय।
अमूर्त कर्त्ता-भोक्ता प्रभु कर्म से संयुक्त है।।२७।।

कर्म मल से मुक्त आतम मुक्ति कन्या को वरे।
सर्वज्ञता समदर्शिता सह अनन्तसुख अनुभव करे।।२८।।
आतम स्वयं सर्वज्ञ-समदर्शित्व की प्राप्ति करे।
अर स्वयं अव्याबाध एवं अतीन्द्रिय सुख अनुभवे।।२९।।
श्वास आयु इन्द्रिबलमय प्राण से जीवित रहे।
त्रय लोक में जो जीव वे ही जीव संसारी कहे।।३०।।
अगुरुलघुक स्वभाव से जिय अनन्त गुण मय परिणमें।
जिय के प्रदेश असंख्य पर जिय लोकव्यापी एक है।।३१।।
बन्धादि विरहित सिद्ध आस्रव आदि युत संसारि सब।
संसारि भी होते कभी कुछ व्याप्त पूरे लोक में।।३२।।

अलप या बहु क्षीर में ज्यों पद्ममणि आकृति गहे।
त्यों लघु-गुरु इस देह में ये जीव आकृतियाँ धरें।।३३।।
दूध-जल वत एक जिय-तन कभी भी ना एक हों।
अध्यवसान विभाव से जिय मलिन हो जग में भ्रमें।।३४।।
जीवित नहीं जड़ प्राण से पर चेतना से जीव हैं।
जो वचन गोचर हैं नहीं वे देह विरहित सिद्ध हैं।।३५।।
अन्य से उत्पाद नहिं इसलिए सिद्ध न कार्य हैं।
होते नहीं हैं कार्य उनसे अतः कारण भी नहीं।।३६।।
सद्भाव हो न मुक्ति में तो ध्रुव-अध्रुवता ना घटे।
विज्ञान का सद्भाव अर अज्ञान असत कैसे बनें?।।३७।।

कोई वेदे कर्म फल को, कोई वेदे करम को।
कोई वेदे ज्ञान को निज त्रिविध चेतकभाव से।।३८।।
थावर करम फल भोगते, त्रस कर्मफल युत अनुभवें।
प्राणित्व से अतिक्रान्त जिनवर वेदते हैं ज्ञान को।।३९।।
ज्ञान-दर्शन सहित चिन्मय द्विविध है उपयोग यह।
ना भिन्न चेतनतत्व से है चेतना निष्पन्न यह ।।४०।।
मतिश्रुतावधि अर मनः केवल ज्ञान पाँच प्रकार हैं।
कुमति कुश्रुत विभंग युत अज्ञान तीन प्रकार हैं।।४१।।
चक्षु-अचक्षु अवधि केवल दर्श चार प्रकार हैं।
निराकार दरश उपयोग में सामान्य का प्रतिभास है।।४२।।

ज्ञान से नहिं भिन्न ज्ञानी तदपि ज्ञान अनेक हैं।
ज्ञान की ही अनेकता से जीव विश्व स्वरूप है।।४३।।
द्रव्य गुण से अन्य या गुण अन्य माने द्रव्य से।
तो द्रव्य होंय अनन्त या फिर नाश ठहरे द्रव्य का।।४४।।
द्रव्य अर गुण वस्तुतः अविभक्तपने अनन्य हैं।
विभक्तपन से अन्यता या अनन्यता नहिं मान्य है।।४५।।
संस्थान संख्या विषय बहुविध द्रव्य के व्यपदेश जो।
वे अन्यता की भाँति ही, अनन्यपन में भी घटे।।४६।।
धन सेधनी अरु ज्ञान से ज्ञानी द्विविध व्यपदेश है।
इस भाँति ही पृथकत्व अर एकत्व का व्यपदेश है ।।४७।।

यदि होय अर्थान्तरपना, अन्योन्य ज्ञानी-ज्ञान में।
दोनों अचेतनता लहें, संभव नहीं अत एव यह।।४८।।
प्रथक् चेतन ज्ञान से समवाय से ज्ञानी बने।
यह मान्यता नैयायिकी जो युक्तिसंगत है नहीं।।४९।।
समवर्तिता या अयुतता अप्रथकत्व या समवाय है।
सब एक ही है - सिद्ध इससे अयुतता गुण-द्रव्य में।।५०।।
ज्यों वर्ण आदिक बीस गुण परमाणु से अप्रथक हैं।
विशेष के व्यपदेश से वे अन्यत्व को द्योतित करें।।५१।।
त्यों जीव से संबद्ध दर्शन-ज्ञान जीव अनन्य हैं।
विशेष के व्यपदेश से वे अन्यत्व को घोषित करें।।५२।।

है अनादि-अनन्त आतम पारिणामिक भाव से।
सादि-सान्त के भेद पड़ते उदय मिश्र विभाव से।।५३।।
इस भाँति सत-व्यय अर असत उत्पाद होता जीव के।
लगता विरोधाभास सा पर वस्तुतः अविरुद्ध है।।५४।।
तिर्यंच नारक देव मानुष नाम की जो प्रकृति हैं।
सद्भाव का कर नाश वे ही असत् का उद्भव करें।।५५।।
उदय उपशम क्षय क्षयोपशम पारिणामिक भाव जो।
संक्षेप में ये पाँच हैं विस्तार से बहुविध कहे।।५६।।
पुद्गल करम को वेदते आतम करे जिस भाव को।
उस भाव का वह जीव कर्ता कहा जिनवर देव ने।।५७।।

पुद्गलकरम विन जीव के उदयादि भाव होते नहीं।
इससे करम कृत कहा उनको वे जीव के निजभाव हैं ।।५८।।
यदि कर्मकृत हैं जीव भाव तो कर्म ठहरे जीव कृत।
पर जीव तो कर्त्ता नहीं निज छोड़ किसी पर भाव का ।।५९।।
कर्मनिमित्तिक भाव होते अर कर्म भावनिमित्त से।
अन्योन्य नहि कर्ता तदपि, कर्ता बिना नहिं कर्म है ।।६०।।
निजभाव परिणत आत्मा कर्ता स्वयं के भाव का।
कर्ता न पुद्गल कर्म का यह कथन है जिनदेव का ।।६१।।
कार्मण अणु निज कारकों से करम पर्यय परिणमें।
जीव भी निज कारकों से विभाव पर्यय परिणमें ।।६२।।

यदि करम करते करम को आतम करे निज आत्म को।
क्यों करम फल दे जीव को क्यों जीव भोगे करम फल ।।६३।।
करम पुद्गल वर्गणायें अनन्त विविध प्रकार कीं।
अवगाढ़-गाढ़-प्रगाढ़ हैं सर्वत्र व्यापक लोक में ।।६४।।
आतम करे क्रोधादि तब पुद्गल अणु निजभाव से।
करमत्व परिणत होंय अर अन्योन्य अवगाहन करें ।।६५।।
ज्यों स्कन्ध रचना पुद्गलों की अन्य से होती नहीं।
त्यों करम की भी विविधता परकृत कभी होती नहीं ।।६६।।
पर, जीव अर पुद्गलकरम पय-नीरवत प्रतिबद्ध हैं।
करम फल देते उदय में जीव सुख-दुख भोगते ।।६७।।

चेतन करम युत है अतः करता-करम व्यवहार से।
जीव भोगे करमफल नित चैत्य-चेतक भाव से ।।६८।।
इसतरह कर्मों की अपेक्षा जीव को कर्ता कहा।
पर, जीव मोहाच्छन्न हो भ्रमता फिरै संसार में ।।६९।।
जिन वचन से पथ प्राप्त कर उपशान्त मोही जो बने।
शिवमार्ग का अनुसरण कर वे धीर शिवपुर को लहें ।।७०।।
आतम कहा चैतन्य से इक ज्ञान-दर्शन से द्विविध।
उत्पाद-व्यय-ध्रुव से त्रिविध अर चेतना से भी त्रिविध ।।७१।।
चतुपंच षट् व सप्त आदिक भेद दसविध जो कहे।
वे सभी कर्मों की अपेक्षा जिय के भेद जिनवर ने कहे ।।७२।।

प्रकृति थिति अनुभाग बन्ध प्रदेश से जो मुक्त हैं।
वे उर्द्धगमन स्वभाव से हैं प्राप्त करते सिद्धपद ।।७३।।
स्कन्ध उनके देश अर परदेश परमाणु कहे।
पुद्गलकाय के ये भेद चतु यह कहा जिनवर देव ने ।।७४।।
स्कन्ध पुद्गलपिंड है अर अर्द्ध उसका देश है।
अर्धार्द्ध को कहते प्रदेश अविभागी अणु परमाणु है ।।७५।।
सूक्ष्म-बादर परिणमित स्कन्ध को पुद्गल कहा।
स्कन्ध के षटभेद से त्रैलोक्य यह निष्पन्न है ।।७६।।
स्कन्ध का वह निर्विभागी अंश परमाणु कहा।
वह एक शाश्वत मूर्तिभव अर अविभागी अशब्द है ।।७७।।

कथनमात्र से मूर्त है अर धातु चार का हेतु है।
परिणामी तथा अशब्द जो परमाणु है उसको कहा ।।७८।।
स्कन्धों के टकराव से शब्द उपजें नियम से।
शब्द स्कन्धोत्पन्न है अर स्कन्ध अणु संघात है।।७९।।
अवकाश नहिं सावकाश नहिं अणु अप्रेशी नित्य है।
भेदक-संघातक स्कन्ध का अर विभाग कर्ता काल का ।।८०।।
एक वरण-रस गंध युत अर दो स्पर्श युत परमाणु है।
वह शब्द हेतु अशब्द है, स्कन्ध में भी द्रव्याणु है।।८१।।
जो इन्द्रियों से भोग्य हैं अर काय-मन के कर्म जो।
अर अन्य जो कुछ मूर्त हैं वे सभी पुद्गल द्रव्य हैं।।८२।।

धर्मास्तिकाय अवर्ण अरस अगंध अशब्द अस्पर्श है।
लोकव्यापक पृथुल अर अखण्ड असंख्य प्रदेश है।।८३।।
अगुरुलघु अंशों से परिणत उत्पाद-व्यय-ध्रुव नित्य है।
क्रिया गति में हेतु है वह पर स्वयं ही अकार्य है।।८४।।
गमन हेतुभूत है ज्यों जगत में जल मीन को।
त्यों धर्म द्रव्य है गमन हेतु जीव पुद्गल द्रव्य को।।८५।।
धरम नामक द्रव्यवत ही अधर्म नामक द्रव्य है।
स्थिति क्रिया से युक्त को यह स्थितिकरण में निमित्त है।।८६।।
धरम अर अधरम से ही लोकालोक गति-स्थिति बने।
वे उभय भिन्न-अभिन्न भी अर सकल लोक प्रमाण है।।८७।।

होती गति जिस द्रव्य की स्थिति भी हो उसी की।
वे सभी निज परिणाम से ठहरें या गति क्रिया करें।।८८।।
जिनका होता गमन है होता उन्हीं का ठहरना।
तो सिद्ध होता है कि द्रव्य चलते-ठहरते स्वयं से।।८९।।
जीव पुद्गल धरम आदिक लोक में जो द्रव्य हैं।
अवकाश देता इन्हें जो आकाश नामक द्रव्य वह।।९०।।
जीव पुद्गल काय धर्म अधर्म लोक अनन्य हैं।
अन्त रहित आकाश इनसे अनन्य भी अर अन्य भी।।९१।।
अवकाश हेतु नभ यदि गति-थिति कारण भी बने।
तो ऊर्ध्वगामी आत्मा लोकान्त में जा क्यों रुके।।९२।।

लोकान्त में तो रहे आत्मा अष्ट कर्म अभाव कर।
तो सिद्ध है कि नभ गति-थिति हेतु होता है नहीं।।९३।।
नभ होय यदि गति हेतु अर थिति हेतु पुद्गल जीव को।
तो हानि होय अलोक की अर लोक अन्त नहीं बने।।९४।।
इसलिए गति थिति निमित्त आकाश हो सकता नहीं।
जगत के जिज्ञासुओं को यह कहा जिनदेव ने।।९५।।
धर्माधर्म अर लोक का अवगाह से एकत्व है।
अर पृथक् पृथक् अस्तित्व से अन्यत्व है भिन्नत्व है।।९६।।
जीव अर आकाश धर्म अधर्म काल अमूर्त है।
मूर्त पुद्गल जीव चेतन शेष द्रव्य अजीव हैं।।९७।।

सक्रिय करण-सह जीव-पुद्गल शेष निष्क्रिय द्रव्य हैं।
काल पुद्गल का करण पुद्गल करण है जीव का ।।९८।।
हैं जीव के जो विषय इन्द्रिय ग्राह्य वे सब मूर्त हैं।
शेष सब अमूर्त हैं मन जानता है उभय को ।।९९।।
क्षणिक है व्यवहार काल अरु नित्य निश्चय काल है।
परिणाम से हो काल उद्भव काल से परिणाम भी ।।१००।।
काल संज्ञा सत प्ररूपक नित्य निश्चय काल है।
उत्पन्न-ध्वंसी सतत रह व्यवहार काल अनित्य है।।१०१।।
जीव पुद्गल धर्म-अधर्म काल अर आकाश जो।
हैं 'द्रव्य संज्ञा सर्व की कायत्व है नहिं काल को ।।१०२।।

इस भाँति जिनध्वनिरूप पंचास्ति प्रयोजन जानकर।
जो जीव छोड़े राग-रुष वह छूटता भव दुःख से ।।१०३।।
इस शास्त्र के सारांश रूप शुद्धात्मा को जानकर।
उसका करे जो अनुसरण, वह शीघ्र मुक्ति वधु वरै ।।१०४।।
मुक्तिपद के हेतु से शिरसा नमू महावीर को।
पदार्थ के व्याख्यान से प्रस्तुत करूँ शिवमार्ग को ।।१०५।।
सम्यक्त्व ज्ञान समेत चारित राग-द्वेष विहीन जो।
मुक्ति का मारग कहा भवि जीव हित जिनदेव ने ।।१०६।।
नव पदों के श्रद्धान को समकित कहा जिनदेव ने।
वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान अर समभाव ही चारित्र है ।।१०७।।

फल जीव और अजीव तद्गत पुण्य एवं पाप हैं।
आसरव संवर निर्जरा अर बन्ध मोक्ष पदार्थ हैं।।१०८।।
संसारी अर सिद्धात्मा उपयोग लक्षण द्विविध।
जग जीव वर्ते देह में अर सिद्ध देहातीत है।।१०९।।
भू जल अनल वायु वनस्पति काय जीव सहित कहे।
बहु संख्य पर यति मोहयुत स्पर्श ही देती रहें।।११०।।
उनमें त्रय स्थावर तनु त्रस जीव अग्नि वायु युत
ये सभी मन से रहित हैं अर एक स्पर्शन सहित हैं।।१११।।
ये पृथ्वी कायिक आदि जीव निकाय पाँच प्रकार के।
सभी मन परिणाम विरहित जीव एकेन्द्रिय कहे।।११२।।

अण्डस्थ अर गर्भस्थ प्राणी ज्ञान शून्य अचेत ज्यों।
पंचविध एकेन्द्रि प्राणी ज्ञान शून्य अचेत त्यों।।११३।।
लट केंचुआ अर शंख शीपी आदि जिय पग रहित हैं।
वे जानते रस स्पर्श को इसलिये दो इन्द्रि कहे।।११४।।
चींटि-मकड़ी-लीख-खटमल बिच्छु आदिक जंतु जो।
फरस रस अरु गंध जाने तीन इन्द्रिय जीव वे।।११५।।
मधुमक्खी भ्रमर पतंग आदि डांस मच्छर जीव जो।
वे जानते हैं रूप को भी अतः चौइन्द्रिय कहें।।११६।।
भू-जल-गगनचर सहित जो सैनी-असैनी जीव हैं।
सुर-नर-नरक तिर्यंचगण ये पंच इन्द्रिय जीव हैं।।११७।।

नर कर्मभूमिज भोग भूमिज, देव चार प्रकार हैं।
तिर्यंच बहुविध कहे जिनवर, नरक सात प्रकार हैं।।११८।।
गति आयु जो पूरव बंधे जब क्षीणता को प्राप्त हों।
अन्य गति को प्राप्त होता जीव लेश्या वश अहो।।११९।।
पूर्वोक्ति जीव निकाय देहाश्रित कहे जिनदेव ने।
देह विरहित सिद्ध हैं संसारी भव्य-अभव्य हैं।।१२०।।
ये इन्द्रियाँ नहिं जीव हैं षट्काय भी चेतन नहीं।
है मध्य इनके चेतना वह जीव निश्चय जानना।।१२१।।
जिय जानता अर देखता, सुख चाहता दुःख से डरे।
भाव करता शुभ-अशुभ फल भोगता उनका अरे।।१२२।।

पूर्वोक्त अनेक प्रकार से इसतरह जाना जीव को।
जानो अजीव पदार्थ अब जड़ चिन्ह की पहचान से।।१२३।।
जीव के गुण हैं नहीं जड़ पुद्गलादि पदार्थ में।
उनमें अचेतनता कही चेतनपना है जीव में।।१२४।।
सुख-दुःख का वेदन नही, हित-अहित में उद्यम नही।
ऐसे पदार्थ अजीव है, कहते श्रमण उसको सदा।।१२५।।
संस्थान अर संघात रस-गँध-वरण शब्द स्पर्श जो।
वे सभी पुद्गल दशा में पुद्गल दरव निष्पन्न हैं।।१२६।।
चेतना गुण युक्त आतम अशब्द अरस अगंध है।
है अनिर्दिष्ट अव्यक्त वह, जानो अलिंगग्रहण उसे।।१२७।।

संसार तिष्ठें जीव जो रागादि युत होते रहें।
रागादि से हो कर्म आस्रव करम से गति-गमन हो।।१२८।।
गति में सदा हो प्राप्त तन-तन इन्द्रियों से सहित हो।
इन्द्रियों से विषयग्रहण अर विषय से फिर राग हो।।१२९।।
रागादि से भवचक्र में प्राणी सदा भ्रमते रहें।
हैं अनादि अनन्त अथवा, सनिधन जिनवर कहे।।१३०।।
मोह राग अर द्वेष अथवा हर्ष जिसके चित्त में।
इस जीव के शुभ या अशुभ परिणाम का सद्भाव है।।१३१।।
शुभभाव जिय के पुण्य हैं अर अशुभ परिणति पाप हैं।
उनके निमित से पौद्गलिक परमाणु कर्मपना धरें।।१३२।।

जो कर्म का फल विषय है, वह इन्द्रियों से भोग्य हैं।
इन्द्रिय विषय हैं मूर्त इससे करम फल भी मूर्त है।।१३३।।
मूर्त का स्पर्श मूरत, मूर्त बँधते मूर्त से।
आत्मा अमूरत करम मूरत, अन्योन्य अवगाहन लहें।।१३४।।
हो रागभाव प्रशस्त अर अनुकम्प हिय में है जिसे।
मन में नहीं हो कलुषता नित पुण्य आस्रव हो उसे।।१३५।।
अरहंत सिद्ध अर साधु भक्ति गुरु प्रति अनुगमन जो।
वह राग कहलाता प्रशस्त जँह धरम का आचरण हो।।१३६।।
क्षुधा तृषा से दुःखीजन को व्यथित होता देखकर।
जो दुःख मन में उपजता करुणा कहा उस दुःख को।।१३७।।

अभिमान माया लोभ अर क्रोधादि भय परिणाम जो।
सब कलुषता के भाव ये हैं क्षुभित करते जीव को ।।१३८।।
प्रमादयुतचर्या कलुषता, विषयलोलुप परिणति।
परिताप अर अपवाद पर का पाप आस्रव हेतु हैं ।।१३९।।
चार संज्ञा तीन लेश्या पाँच इन्द्रियाधीनता।
आर्त-रौद्र कुध्यान अर कुज्ञान है पापप्रदा ।।१४०।।
कषाय-संज्ञा इन्द्रियों का निग्रह करें सन् मार्ग से।
वह मार्ग ही संवर कहा, आस्रव निरोधक भाव से।।१४१।।
जिनको न रहता राग-द्वेष अर मोह सब परद्रव्य में।
आस्रव उन्हें होता नहीं, रहते सदा समभाव में ।।१४२।।

जिस व्रती के त्रय योग में जब पुण्य एवं पाप ना।
उस व्रती के उस भाव से तब द्रव्य संवर वर्तता ।।१४३।।
शुद्धोपयोगी भावयुत जो वर्तते हैं तपविषै।
वे नियम से निज में रमें बहु कर्म को भी निर्जरें ।।१४४।।
आत्मानुभव युत आचरण से ध्यान आत्मा का धरें।
वे तत्त्वविद संवर सहित हो कर्म रज को निर्जरें ।।१४५।।
नहिं राग-द्वेष-विमोह अरु नहिं योग सेवन है जिसे।
प्रगटी शुभाशुभ दहन को, निज ध्यानमय अग्नि उसे।।१४६।।
आतमा यदि मलिन हो करता शुभाशुभ भाव को।
तो विविध पुद्गल कर्म द्वारा प्राप्त होता बन्ध को ।।१४७।।

है योग हेतुक कर्म आस्रव योग तन-मन जनित हैं।
है भाव हेतुक बन्ध अर भाव रतिरुष सहित है।।१४८।।
प्रकृति प्रदेश आदि चतुर्विधि कर्म के कारण कहे।
रागादि कारण उन्हें भी, रागादि बिन वे ना बंधे ।।१४९।।
मोहादि हेतु अभाव से ज्ञानी निरास्रव नियम से।
भावास्रवों के नाश से ही कर्म का आस्रव रुके।।१५०।।
कर्म आस्रवरोध से सर्वत्र समदर्शी बने।
इन्द्रिसुख से रहित अव्याबाध सुख को प्राप्त हों।।१५१।।
ज्ञान दर्शन पूर्ण अर परद्रव्य विरहित ध्यान जो।
वह निर्जरा का हेतु है निजभाव परिणत जीव को ।।१५२।।

जो सर्व संवर युक्त हैं अरु कर्म सब निर्जर करें।
वे रहित आयु वेदनीय और सर्व कर्म विमुक्त है।।१५३।।
चेतन स्वभाव अनन्यमय निर्बाध दर्शन-ज्ञान है।
दृग ज्ञानस्थित अस्तित्व ही चारित्र जिनवर ने कहा ।।१५४।।
स्व समय स्वयं से नियत है पर भाव अनियत पर समय।
चेतन रहे जब स्वयं में तब कर्मबंधन पर विजय।।१५५।।
जो राग से पर द्रव्य में करते शुभाशुभ भाव हैं।
परचरित में लवलीन वे स्व-चरित्र से परिभ्रष्ट है।।१५६।।
पुण्य एवं पाप आस्रव आतम करे जिस भाव से।
वह भाव है परचरित ऐसा कहा है जिनदेव ने।।१५७।।

जो सर्व संगविमुक्त एवं अनन्य आत्मस्वभाव से
जाने तथा देखे नियत रह उसे चारित्र है कहा ।।१५८।।
पर द्रव्य से जो विरत हो निजभाव में वर्तन करे।
गुणभेद से भी पार जो वह स्व-चरित को आचरे ।।१५९।।
धर्मादि की श्रद्धा सुदृग पूर्वांग बोध-सुबोध है।
तप माँहि चेष्टा चरण मिल व्यवहार मुक्तिमार्ग है ।।१६०।।
जो जीव रत्नत्रय सहित आत्म चिन्तन में रमे।
छोड़े ग्रहे नहिं अन्य कुछ शिवमार्ग निश्चय है यही ।।१६१।।
देखे जाने आचरे जो अनन्यमय निज आत्म को।
वे जीव दर्शन-ज्ञान अर चारित्र हैं निश्चयपने ।।१६२।।

जाने-देखे सर्व जिससे हो सुखानुभव उसी से।
यह जानता है भव्य ही श्रद्धा करे ना अभव्य जिय ।।१६३।।
दृग-ज्ञान अर चारित्र मुक्तिपंथ मुनिजन ने कहे।
पर ये ही तीनों बंध एवं मुक्ति के भी हेतु हैं ।।१६४।।
शुभभक्ति से दुखमुक्त हो जाने यदि अज्ञान से।
उस ज्ञानी को भी परसमय ही कहा है जिनदेव ने ।।१६५।।
अरहंत सिद्ध मुनिशास्त्र की अर चैत्य की भक्ति करे।
बहु पुण्य बंधता है उसे पर कर्मक्षय वह नहि करे ।।१६६।।
अणुमात्र जिसके हृदय में परद्रव्य के प्रति राग है।
हो सर्व आगमधर भले जाने नहीं निजभक्ति को ।।१६७।।

चित्त भ्रम से रहित हो निःशंक जो होता नहीं।
हो नहीं सकता उसे संवर अशुभ अर शुभ दुःख का ।।१६८।।
निःसंग निर्मम हो मुमुक्षु सिद्ध की भक्ति करें।
सिद्धसम निज में रमन कर मुक्ति कन्या को वरें ।।१६९।।
तत्त्वार्थ अर जिनवर प्रति जिसके हृदय में भक्ति है।
संयम तथा तप युक्त को भी दूरतर निर्वाण है ।।१७०।।
अरहंत-सिद्ध-जिनवचन सह जिनप्रतिमाओं के भजन को।
संयम सहित तप जो करें वे जीव पाते स्वर्ग को ।।१७१।।
यदि मुक्ति का है लक्ष्य तो फिर राग किंचित् ना करो।
वीतरागी बन सदा को भवजलधि से पार हो ।।१७२।।

प्रवचनभक्ति से प्रेरित सदा यह हेतु मार्ग प्रभावना।
दिव्यध्वनि का सारमय यह ग्रन्थ मुझसे है बना ।।१७३।।

प्राकृत में गाथा रची श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने।
लेकर उन्हीं का सार मुझसे रच गया हरिगीत में ।।
निर्वाण संवत् वीर का दो सहस पंच शत तीस को।
पूरण हुआ अनुवाद यह वैशाख शुक्ला तीज को ।।

●●●